Review Of Research
Volume-2, Issue- 4 , Jan -2013
ISSN : 2249-894X Available online at www. lbp.world

सूरजपाल चौहान के कहानी साहित्य में चित्रित दलित यथार्थ
('धोखा' कहानी संग्रह के विशेष संदर्भ में)

डॉ. जिभाऊ मोरे
हिंदी विभागाध्यक्ष , के. जे. सोमैया महाविद्यालय,
कोपरगाँव जिला — अ.नगर (महाराष्ट्र).

मनुष्य की अस्मिता और मनुष्य की समता के समर्थन में जिस साहित्य का जन्म हुआ, उसे दलित साहित्य कहा जाता है। एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में हिंदी दलित साहित्य का आरंभ सन १९८० के बाद हुआ। यह आंदोलन विषम सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ आक्रामक रूप धारण करता है और क्रांति के द्वारा समता की स्थापना करना चाहता है। साथ ही दलित समुदाय को उनके भूतकाल की भयावह स्थितियों का अहसास करा देना और भविष्य के प्रति सजग करना भी दलित साहित्य का एक और उद्देश्य है। क्योंकि इतिहास गवाह है कि हमारे देश में दलित समाज सदियों से शोषित और पीड़ित है। अत: दलित लेखकों के लिए साहित्य वास्तव में दलित — पीड़ा की अखंड श्रृंखला को जान लेने का तथा उसे रोकने का एक सशक्त माध्यम है। फिर वे स्व. ओमप्रकाश वाल्मीकि हो या मोहनदास नैमिषराय अथवा जयप्रकाश कर्दम। आज ऐसे दर्जनों नाम गिनाये जा सकते हैं, जिन्होंने अपने सशक्त लेखन के बल पर हिंदी दलित साहित्य में अपनी पहचान कायम की है।

श्री. सूरजपाल चौहान भी ऐसा ही एक चर्चित नाम है, जिन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा और विकट जीवनानुभव के बल पर हिंदी साहित्य में अपनी एक मिसाल कायम की है। वैसे सूरजपाल चौहान अन्य दलित लेखक — कवियों से भिन्न हैं। भिन्न इस अर्थ में कि वे अपने साहित्य में मात्र सवर्णों द्वारा दलितों के साथ किए गए बर्बरतापूर्ण व्यवहार या अत्याचारों का ही वर्णन नहीं करते, बल्कि आजकल के पढ़े — लिखे दलितों द्वारा अन्य गरीब और पिछड़े दलितों के साथ हो रहे उपेक्षापूर्ण व्यवहार का भी बड़ी बेबाकी के साथ चित्रण करते हैं। किस तरह आज का उच्चशिक्षित और नौकरपेक्षा दलित वर्ग अपने ही गरीब रिश्तेदार तथा अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों के साथ उपेक्षा बरतता है ? चौहानजी की लिखी 'हिस्से की अस्थियाँ' शीर्षक कहानी इसी तथ्य कों उजागर करती है। इस कहानी का एक दलित पात्र पढ़—लिख कर अच्छी तनखावाली नौकरी पाकर गाँव से दूर रहता है। अपने बूढ़े माँ — बाप को लगभग भुला देता है। पिता की मृत्यु के बाद नौकरी करनेवाला भाई पिताजी की अस्थियों को हरिद्वार ले जाने की बात करता है और वहाँ जाने के लिए छोटे भाई को रूपयों का प्रबंध करने की सूचना देता है। तब गाँव में रहनेवाले उस गरीब भाई का यह कहना कि मेरे हिस्से की अस्थियाँ में अपने गाँव की नदी में ही विसर्जित करूंगा। मेरे लिए वही हरिद्वार है — कितना मार्मिक और वेदनादायक है। उनकी 'नया ब्राह्मण' कहानी भी इसी उद्देश्य से लिखी गई है।

भारतीय समाज—व्यवस्था में दलित जाति में जन्म लेने के कारण उस पुरूष या स्त्री को किस प्रकार की यातना का शिकार होना पड़ता है, सूरजपाल चौहान की अधिकांश कहानियाँ इसी यथार्थ

को स्पष्ट करती है। उनके स.२०११ में प्रकाशित 'धोखा' संग्रह की कहानियाँ इस सत्य को उजागर करती हैं। यह लघुकथाओं का संग्रह है, जिसके अनुशीलन से पता चलता है कि पहले आत्मकथा एवं कविता तथा कहानी साहित्य के जरिए सफलता प्राप्त करनेवाले चौहानजी एक सफल लघुकथाकार भी हैं। साहित्य की लगभग सभी विधाओं में चौहानजी ने दलित चेतना को बखूबी अंजाम दिया है। प्रस्तुत लघुकथा संग्रह इसका अच्छा उदाहरण है। इस (धोखा) संग्रह में कुल चौबीस लघुकथाएँ हैं। यथा — 'वह आदमी', 'मैं हूँ ना', 'बेटी और बहू', 'ऊँचे लोगों के बीच', 'नीच जाति', 'धोखा', 'स्ट्यूपिड', 'उध्दार', 'बावला', 'आविष्कार', 'चिंता', 'अंतर', 'ट्रिक', 'करवा चौथ','एकता का ढोल', 'बहुरूपिये', 'माँ और बेटा', 'चिल्ल — पों', 'असभ्य', 'छू नहीं सकता', 'राष्ट्रीय खेल', 'सच कहनेवाला', 'शूद्र है', 'सत्तो बुआ' और 'इंसिका फिर कभी न आई'। नीचे इन लघुकथाओं पर आलोचनात्मक दृष्टिपात का प्रयास किया जा रहा है।

संग्रह की प्रथम लघुकथा का 'वह आदमी' सामाजिक शोषण और गरीबी की समस्याओं से यहाँ तक आहत है कि श्मशान — घाट की ओर बढ़ रही अर्थी के पीछेवाली भीड़ में अनायास शामिल हो जाता है। मृतक के बेट के हाथ में स्थित दो किलो घी और हवन — सामग्री से भरा प्लास्टिक का थैला मदद के नाम पर अपने हाथ में संभाल लेता है और बीच रास्ते में ही खिसक जाता है अर्थात चोरी करके भाग जाता है। कहानी का 'वह व्यक्ति' एक दलित है और दलित है इसलिए दरिद्र है, भूखा है, प्यासा है, उपेक्षित है, पीड़ित है। इसलिए हवन — सामग्री लेकर भाग निकलता हैं। ये गरीबी और दरिद्रता इस देश के दलित को कुछ भी करने के लिए बाध्य कर देती है, जिसका दोषी वह नहीं, अपितु यहाँ की व्यवस्था है। द्वितीय लघुकथा 'मैं हूँ ना' नौकरी के सिलसिले में पति से दूर रहनेवाली एक एकाकी अबला की त्रासद कथा हैं। नारी को हमारे देश में हमेशा शूद्र ही नहीं अतिशूद्र का—सा व्यवहार सहना पड़ा है। इस कहानी की एकाकी नारी के साथ उसके ही ऑफिस के लोगों से नीच हरकतें सहनी पडती है। स्वयं को सभ्य तथा सुसंस्कृत समझनेवाले भारतीय पुरूष — समाज की गंदी नीयत एवं नीचता बेबाक चित्र है यह लघुकथा। उसकी तुलना में उसी महिला के दस वर्षीय बालक का यह वाक्य " मम्मी, इतना डरती क्यों हो, मैं हूँ ना !" कितना आश्वस्त करनेवाला है ? संग्रह की तृतीय लघुकथा भी कुछ ऐसी ही है, जिसमें सूरजपाल चौहान ने बेटी और बहू का फर्क बड़े मार्मिक ढ़ंग से समझाया है। इस कहानी में मात्र रिश्ते का नाम ही स्त्री को शोषण की खाई में ढकेलता जाता है। अगर वह बहू है तो शोषण का शिकार बनती है और बेटी है तो शोषकों का साथ देकर हाथ बटाती है। वाह रे देश! और वाह री औरत!

'सूरजपाल चौहान का यह लघु कथा संग्रह जातिवादी समाज की वास्तविकताओं को बिना किसी लाग — लपेट के प्रस्तुत करता है।' [१]चौहानजी अपनी कहानियों की विषयवस्तु के लिए कल्पनालोक का सहारा नहीं लेते और न ही 'चमत्कारिक घटनाओं की सृष्टि करते हैं। वे सीधे जीवन से, जीवन के आस — पास घट रही घटनाओं से कथ्य ग्रहण करते हैं। [२] जो पाठकसमाज के लिए अपरिचित या अनजाने नहीं होते। संग्रह की चतुर्थ लघु कथा 'ऊचे लोंगो के बीच' इसी तथ्य की परिचायक है। बेटे के जन्म — दिवस की पार्टी में बुला कर, उसमें खान — पान का आनंद उठाते लेखक से बात — बात में खुलेआम जाति का उल्लेख करनेवाला रमन भारद्वाज सवर्ण समाज की दूषित और गंदी सोच का प्रतीक है। नतीजा बेचारा लेखक बिना भोजन किए वहाँ से निकल पडा था। इसी कारण सूरजपाल चौहान की कहानियाँ पाठकों पर गहरा असर छोड जाती हैं।

संग्रह की 'नीच जाति' शीर्षक कहानी यह दर्शाती है कि इस देश के न केवल पिछड़े और निरक्षर बल्कि बुद्धिमान और पढ़े — लिखे दलितों को भी कितना उपेक्षित और अपमानित जीवन भोगना पड़ता है। दसवी कक्षा में पढ़नेवाला बुद्धिमान और होशियार हरिया गाँव के ठाकुर के बच्चे को पढ़ाने हवेली पर जाता है और कोठी में मानतख्त पर बैठने से अपमान और गलौच का हकदार

बनता है। यथा ; "सारे चूहड़े की इतनी मजाल कि हमारे तख्त पे पाँव फैलाकर बैठे, तोय पढ़ावै आवै तो का है...., है तो सारो नीच जाति को ही।" [३] यह है इस देश के दलितों का वर्तमान यथार्थ !

'धोखा' इस संग्रह की शीर्षक लघु कथा है। यह कथा साबित करती है कि दलित लेखक या कहानीकार की 'प्रतिबद्धता सूरजपाल चौहान के लिए सहूलियत भरा मामला नहीं है। वह जितना 'औरों' के प्रति निर्मम है उतना अपने और 'अपनों' के प्रति कठोर। [४] 'धोखा', 'अंतर' और 'एकता का ढोल' जैसी लघूकथाएँ यही साबित करती हैं। एक सच्चे लेखक की इमानदारी, निष्पक्षता और तटस्थता की गवाह है ये कहानियाँ। 'धोखा' कहानी में दिखाया गया है कि उच्च शिक्षित एवं उच्च — पदस्थ दलित लोंगों की सोच भी किसतरह दोगली होती है। पढ़ —लिख कर बड़े पदों पर कार्यरत ये तथाकथित दलित भी कैसे अन्य दलित जातियों के प्रति तिरस्कार और तटस्थता रखते हैं। लेखक का मानना है कि इन्हीं लोगों ने डॉ. बाबासाहेब आंबेड़कर को 'धोखा' दिया है।

'स्टयूपिड़' कहानी का नायक शिवचरण अपने से पंद्रह साल बड़ी सुमित्रा नामक शादीशुदा औरत से बेहद प्यार करता है। इसकारण अपने घरवालों द्वारा ब्याही गई लड़की का मुँह तक नहीं देखता। दो वर्ष पश्चात माँ — बाप द्वारा समझाने पर ससुराल चला जाता है और एक युवती को चाहने लगता है। उसका पीछा करते हुए जंगल में चला जाता है। वहाँ उसी लड़की से उसे पता चलता है कि वह और कोई नहीं बल्कि उसकी अपनी बीवी है। 'उद्धार' नामक कहानी फिर एक बार गाँव—जवार के सवर्णों द्वारा दलितों की बहू—बेटियों पर पड़ती कुदृष्टि और नीचतापूर्ण हरकतों से रूबरू कराती है। गाँव का ज्ञानचंद नामक दुष्ट ब्राह्मण दलित युवती किन्नो को खेत में अकेली देख कर कहता है, "देख री किन्नो, तू ठहरी अनपढ़ औरत, तुझे कुछ पता तो है नहीं, अरी—बावली, में तो तेरा उद्धार करने आया हूँ.... अपने तो सास्तरों में भी लिखा है कि तेरी जैसी सुंदर औरतों का हमारे पुरखे हमेशा से उद्धार करते आए हैं।.... री नीच चमरिया, तूने इंद्र और अहिल्या की कहानी नहीं सुनी क्या ? " [५]

'बावला' कथा सवर्णों की उस सोच को बेनकाब करती है, जिसके चलते सवर्णों की मक्कारी और संकीर्णता दलितों में दृष्टव्य सहयोग — भावना भी मूर्खता कहलाती है। इस कहानी में बी.एड. का एडमीशन कराने पहुँची एकाकी जरूरतमंद छात्रा की सहायता करनेवाला दलित—युवक कॉलेज के कॅशियर नजरों में बावला ठहरता है, जब कि असल में बावला कॅशियर है। सवर्ण समुदाय की मानसिकता को सूरजपाल चौहान बार—बार बेनकाब करते हैं। संग्रह की 'आविष्कार' शीर्षक कहानी सवर्णों की जातिवादी मानसिकता को हटके अंदाज में और व्यंग्यात्मक शैली में उजागर करती है। कथाकार चौहान के मुताबिक 'जातिवाद' भारतीयों द्वारा किया गया ऐसा 'आविष्कार' है, जिसे हजारों वर्ष तक दुनिया का कोई भी देश नहीं खोज सका।

संग्रह की 'चिंता' शीर्षक कहानी भी सवर्ण समाज की उसी कट्टर एवं पुराणपंथी सड़ी—गली सोच को बेवकाब करती है। इसी सोच के चलते आज भी कहानी के तिलकधारी जैसे लोग इसी चिंता में हैं कि "लोग अधर्मी होते जा रहे हैं...., बनारस के पंडे—पुजारियों पर भूखे मरने तक की नौबत आ गई है, इसीलिए तो मैंने बनारसी—साडियों का धंधा शुरू कर दिया है।" [६] जब कि आजकल देश में साक्षरों तथा समझदारों की आश्वस्त करनेवाली वृद्धि ही ऐसे कठमुल्ला पाखंडियों की चिंता का विषय बन गया है। जिसे वे खुलेआम सार्वजनिक स्थलों पर प्रकट करने से नहीं हिचकते। 'अंतर' आलोच्य कथाकार की एक और मर्मस्पर्शी लघुकथा है। यह पहले जिसतरह हिंदू — धर्म — व्यवस्था में मृत्यु के पश्चात किए जानेवाले कर्मकांडों का पर्दाफाश करती है, उसीतरह बौद्ध धर्म में प्रचलित कर्मकाडों को भी नहीं बख्शती। संक्षेप में धार्मिक मिथ्याचार फिर वह हिंदू — धर्म से संबद्ध हो या बौदध धर्म से, अंततः अधोगति की ओर ही ढकेलते हैं। कर्मकांडो के होने पर दोनों

धर्मों में कोई अंतर (फर्क) नहीं। 'ट्रिक' कहानी साहित्य — जगत में फैले ढोंगी और प्रतिभाविहीन स्वयं — घोषित साहित्यकारों पर मार्मिक व्यंग्य है। दलित लेखक भी उसके अपवाद नहीं हैं।

'करवाचौथ' धार्मिक पाखंड के नाम पर छुट्टी की फिराक में नौकरपेक्षा नारी — समाज पर किया गया एक और व्यंग्य है। आंदोलन के बल पर करवाचौथ के दिन दोपहर तीन बजे के बाद छुट्टी लेने में सफल महिलाओं में वे भी शामिल हैं जिनका व्रत नहीं है। ऐसी एक महिला को लेखक द्वारा टोके जाने पर वह 'कहती है — " तुम्हें क्या, मैं व्रत रखूँ या न रखूँ..., हिम्मत है तो तुम मुझे रोक कर दिखाओ।"

'एकता का ढोल' जैसा कि पहले कहा है, पढ़ — लिख कर सुखी जीवन जीनेवाले दलितों की सवर्ण मानसिकता का परिचय करानेवाली मार्मिक कथा है। लेखक अपनी पढ़ी — लिखी बेटी की शादी किसी भी दलित जाति के युवक से करवाना चाहते हैं, परंतु असफलता हाथ आती है। इसका मुख्य कारण यही था कि लेखक और उनकी बेटी सब की नजरों में पहले 'भंगी' है बाद में और कुछ। कई दलित लेखकों ने तो दबी जबान में यहाँ तक कहा कि आखिर लेखक अपनी बेटी का विवाह गैर वाल्मीकि जाति के लड़के से ही क्यों करना चाहते हैं ? उनके अनुसार लेखक को उनकी बेटी की शादी अपने ही अर्थात वाल्मीकि (भंगी) समाज में ही करनी चाहिए। यह सब सुनकर लेखक की बेटी की प्रतिक्रिया बड़ी मार्मिक है, " ऐसी बात है तो फिर पढ़े—लिखे दलित एकता का ढोल क्यों पीटने में लगे हैं !" यह वाक्य बहुत कुछ कह जाता है। 'बहुरूपिए' दहेज के लालची पिताओं पर एक करारी चोट है, जो पहले तो बड़ी ड़िगें मारते हैं कि हमें दहेज — वहेज नहीं चाहिए। परंतु बाद में उनकी माँगों की लिस्ट बढ़ती ही जाती है। 'माँ और बेटा' कहानी के दलित बच्चे का अपनी माँ से किया गया — 'अम्मा, हम गरीब क्यों हैं, हमारा घर पोखर के किनारे क्यों है... अम्मा हमारा घर ठाकुर बामनों के घर जैसा क्यों नहीं ?" यह सवाल पाठकों को भी द्रवित कर देता है। आज भी दलितों की यही नियति है। यही बच्चा कहानी के अंत में कहता है, "अम्मा तूने ही तो कहा था कि ज्यादा पढ़ने — लिखने से आदमी जल्दी बडा हो जाता है... मुझे रात — भर में बड़ा आदमी बनना है जिससे कि सुबह हम गाँव के मुहल्ले कमाने न जाएँ।" एक अबोध बालक का यह वक्तव्य भंगी समाज की दयनीय स्थिति को उजागर करता है। 'चिल्ल — पो' कहानी भी सवर्णों तथा उनके पढ़ने — लिखनेवाली जवान पीढ़ी की जातिवादी सोच पर प्रकाश डालती है। कोई भी सवर्ण युवक — युवती बड़ी सहजता सें कह जाते हैं — " तुम्हारा तो दाखिला हो ही जाएगा, तुम शड्यूल्ड — कास्ट हो न !"

सवर्ण समाज की मानसिकता को कथाकार चौहान कई बार बेनकाब करते हैं। 'असभ्य' कहानी द्वारा दर्शाया गया है कि सभ्यता का ढोंग रचनेवाले सवर्ण तब—तक सुख—चैन से बैठ नहीं पाते, जब—तक सामनेवाले की जाति का पता न लगा ले। इस कहानी के संजय और अनुपम दलित चेतना की जागृति के प्रमाण हैं, जो अपनी सजगता और प्रतिबद्धता के बल पर सवर्णों के वर्चस्व को सवालों, से घायल करतें हैं। उधर सवर्ण अपनी सर्वोपरिता तथा सत्ता कायम रखने के लिए नित्य नवीन उपायों की तलाश में लगे रहते हैं। वर्तमान युग में स्थित उग्र धार्मिकता का जो पुनरागमन हुआ है, वह इसी उपक्रम की एक कडी है। सच कहनेवाला शूद्र है' जैसी कहानी में सूरजपाल चौहान वर्चस्ववादी सवर्णों की धर्म — लीला पर प्रकाश डालते हैं। राम —कथा में स्थित अतार्किक कथा प्रसंगों पर सवाल उठानेवाले समझदार किंतु दीन—हीन मनुष्य से प्रवचनकार पंडित कहते हैं, " तू शूद्र जान पडता हैं, ऐसा सवाल शूद्र ही कर सकता हैं... " सूरजपालजी की ये लघु कथाएँ उनकी अन्य रचनाओं की तरह दलितों में आत्मविश्वास भरने का महत कार्य करती हैं। उनमें स्थित हीन ग्रंथि को निकाल कर आत्मसम्मान का समावेश करती हैं। 'सत्तो बुआ' की सत्तो इसीतरह एक हिंमतवान दलित महिला हैं। जो अपने भतीजें की पिटाई करनेवाले ठाकुर की जमकर पिटाई कर ईट का जवाब पत्थर

से देती है। इसीतरह संग्रह की 'छू नहीं सकता', 'राष्ट्रीय खेल', 'हंसिका फिर कभी न आई' कहानियाँ भी चौहानजी को समतामूलक समाज के सच्चे पैरोकार सिद्ध करती हैं। उनकी ये कहानियाँ दलित साहित्य के लिए ही नहीं बल्कि साहित्य मात्र के लिए भी अन्यतम उपलब्धियाँ हैं।

संदर्भ :—

१. धोखा (कहानी संग्रह) — सूरजपाल चौहान,भूमिका पृ. ९
२. धोखा (कहानी संग्रह) — सूरजपाल चौहान,भूमिका पृ. ९
३. धोखा (कहानी संग्रह) — सूरजपाल चौहान,भूमिका पृ. ७
४. धोखा (कहानी संग्रह) — सूरजपाल चौहान,भूमिका पृ. ९
५. धोखा (कहानी संग्रह) — सूरजपाल चौहान,भूमिका पृ. ६